ISSN 2277-5897 SABLOG
PEER REVIEWED JOURNAL

149

लोक चेतना का राष्ट्रीय मासिक

सबलोग

जुलाई 2026 • ₹ 50

मार्क्स, गाँधी और प्रेमचन्द

- भारतीय राष्ट्रवाद का एक विस्मृत अध्याय
- रंगमंच पर स्त्री-नाटकों की जगह
- नेतृत्व की विरासत और उसका सामजिक आधार

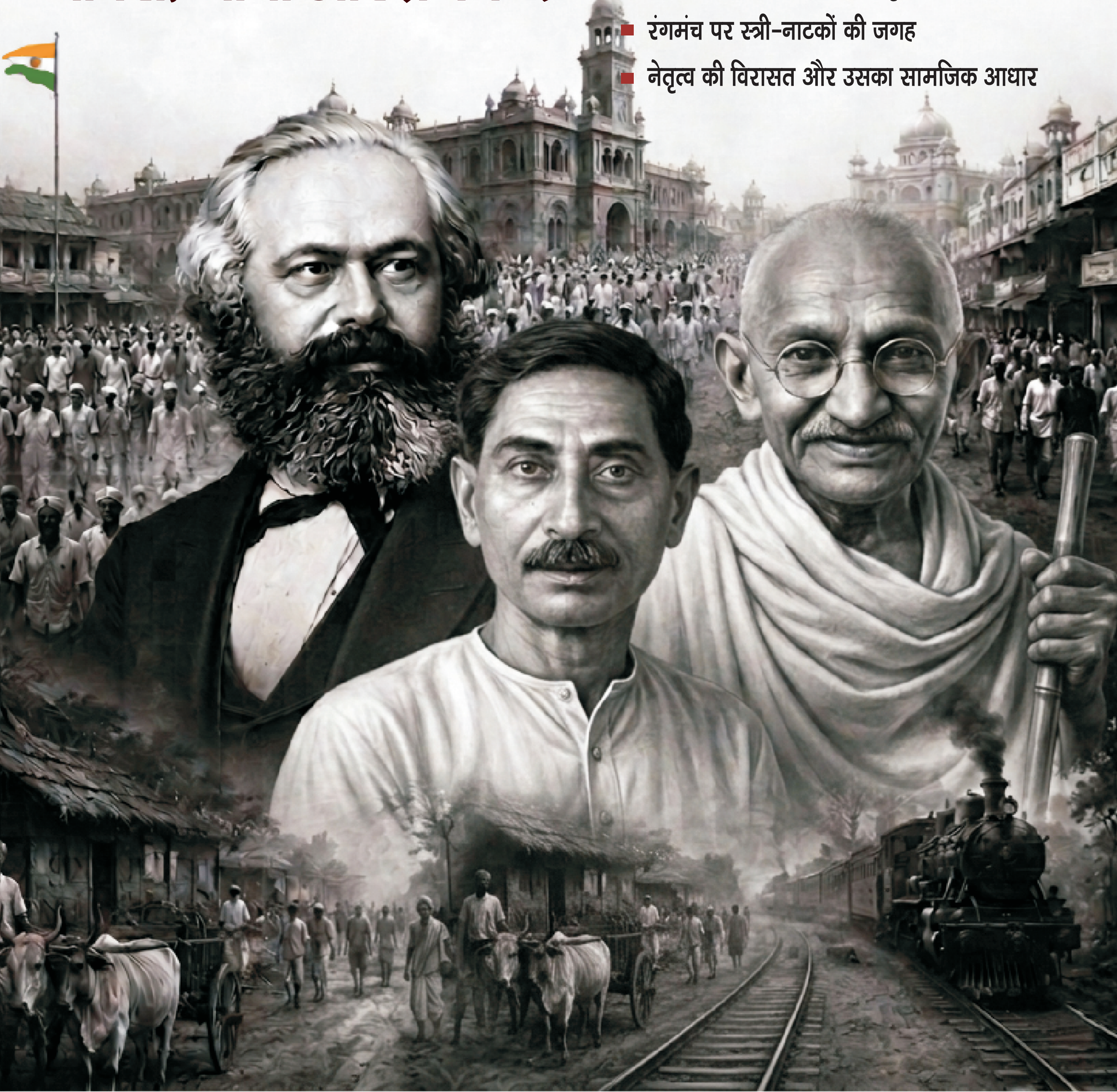

सबलोग-149

वर्ष 17, अंक 7, जुलाई 2026

ISSN 2277-5897 SABLOG

PEER REVIEWED JOURNAL

www.sablog.in

सम्पादक

किशन कालजयी

संयुक्त सम्पादक

प्रकाश देवकुलिश

राजन अग्रवाल

उप-सम्पादक

गुलशन चौधरी

समीक्षा समिति

(Peer Review Committee)

आनन्द कुमार

रत्नेश्वर मिश्र

मणीन्द्र नाथ ठाकुर

मंजु रानी सिंह

सफदर इमाम कादरी

प्रमोद मीणा

राजेन्द्र रवि

मधुरेश

महादेव टोप्पो

विजय कुमार

आशा

सन्तोष कुमार शुक्ल

अखलाक 'आहन'

अभय सागर मिंज

सम्पादकीय सम्पर्क

बी-3/44, तीसरा तल, सेक्टर-16,

रोहिणी, दिल्ली-110089

+918340436365

sablogmonthly@gmail.com

सदस्यता शुल्क

एक अंक : 50 रुपये

वार्षिक : 1100 रुपये रजिस्टर्ड डाक से

सबलोग

खाता संख्या-49480200000045

बैंक ऑफ बड़ौदा,

शाखा-बादली, दिल्ली

IFSC-BARB0TRDBAD

(Fifth Character is Zero)

स्वामी, सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक किशन कालजयी द्वारा बी-3/44, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089 से प्रकाशित और लक्ष्मी प्रिण्टर्स, 556 जी.टी. रोड शाहदरा दिल्ली-110032 से मुद्रित।

पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, उनसे सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

पत्रिका अव्यावसायिक और सभी पद अवैतनिक।

पत्रिका से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए न्यायक्षेत्र दिल्ली।

संवेद फाउण्डेशन का मासिक प्रकाशन

मार्क्स, गाँधी और प्रेमचन्द

मुनादी / दास कैपिटल, हिन्द स्वराज और गोदान : **किशन कालजयी 3**

मुक्ति के नये सूत्रों की तलाश : **मणीन्द्र नाथ ठाकुर 5**

विचारधारा, साहित्य और मनुष्य का प्रश्न : **रामेश्वर राय 8**

अपनी जमीन खोजते प्रेमचन्द : **विनोद शाही 10**

प्रेमचन्द का अधूरा भारत : **मृत्युंजय श्रीवास्तव 12**

वैचारिक पुनर्जागरण की आवश्यकता : **सरोज कुमार वर्मा 15**

गाँधी, प्रेमचन्द और हमारी भाषा-नीति : **अमरनाथ 17**

प्रेमचन्द का दलित सरोकार : **प्रमोद मीणा 19**

'कफन' में सामाजिक विलगाव का प्रश्न : **अच्युतानन्द मिश्र 21**

मार्क्स, गाँधी और प्रेमचन्द की स्त्रियाँ : **अंशुप्रिया 23**

'महाजनी सभ्यता' की रोशनी में हमारे समय का अन्धकार : **दिव्यानन्द 26**

सामाजिक आन्दोलनों की वैचारिक विरासत : **चेतना त्रिवेदी 28**

सृजनलोक

सात कविताएँ : **हिमांशु जमदग्नि,** टिप्पणी : **राही डूमरचीर,** रेखांकन : **प्रीतिमा वत्स 30**

देश

कर्नाटक / नेतृत्व की विरासत और उसका सामाजिक आधार : **संध्या चतुर्वेदी 32**

स्तम्भ

चतुर्दिक / इक्कीसवीं सदी में प्रेमचन्द : **रविभूषण 34**

तीसरी घण्टी / रंगमंच पर स्त्री-नाटकों की जगह : **राजेश कुमार 37**

यत्र-तत्र / प्रेमचन्द, बरास्ते गाँधी और मार्क्स : **जय प्रकाश 40**

देशान्तर / रणनीतिक साझेदारी के नये सोपान : **धीरंजन मालवे 43**

परती परिकथा / भारतीय राष्ट्रवाद का एक विस्मृत अध्याय : **हितेन्द्र पटेल 46**

विविध

शहरनामा / जलवायु असमानता और शहरी जीवन का भविष्य : **राजेन्द्र रवि 49**

जन गण मन / पारिस्थितिकी, मूलवासी और विकास का टकराव : **सर्वेश कुमार मौर्य 52**

सिनेमा / प्रेमचन्द, पूँजी और सिनेमा : **रक्षा गीता 55**

किताब / जड़ों की ओर लौटती कविता का संगीत : **रत्नेश सिन्हा 57**

लिये लुकाठी हाथ / खो गये झोले की एफआईआर : **श्रीकांत आप्टे** 58

रंगसाज / चिरूडीह के 'आर्टिस्ट विलेज' बनने की कहानी : **शेखर 59**

आवरण : शशिकान्त सिंह

अक्षर संयोजनः आशीष कुमार पाठक

अगला अंक : विचारधारा, न्याय और लोकतन्त्र

दास कैपिटल, हिन्द स्वराज और गोदान

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में जब लोकतन्त्र बाजार की भाषा बोल रहा है, राजनीति नैतिकता से दूर होती जा रही है और साहित्य का सार्वजनिक प्रभाव सिकुड़ रहा है, तब कार्लमार्क्स, महात्मा गाँधी और प्रेमचन्द बीसवीं सदी के तीन बड़े बौद्धिक स्रोतों के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। यह वह समय है जब तकनीकी प्रगति और आर्थिक विकास के अभूतपूर्व दावों के बावजूद समाज के भीतर असमानता, असुरक्षा और विभाजन की खाइयाँ लगातार गहरी होती जा रही हैं। सूचना के विस्फोट के इस दौर में संवाद की जगह शोर, नागरिकता की जगह उपभोक्तावाद और सार्वजनिक विवेक की जगह तात्कालिक उत्तेजनाएँ दिखाई देती हैं। ऐसे समय में अतीत के उन विचारकों और रचनाकारों की ओर लौटना केवल स्मरण का उपक्रम नहीं, बल्कि वर्तमान को समझने और भविष्य की दिशा तलाशने का बौद्धिक दायित्व भी है। ये तीनों अलग-अलग भूगोल, परम्पराओं और वैचारिक पृष्ठभूमियों से आते हैं, लेकिन इनके बीच एक गहरा अन्तर्सम्बन्ध भी है। मार्क्स यूरोप की औद्योगिक पूँजीवादी व्यवस्था के आलोचक हैं, गाँधी औपनिवेशिक आधुनिकता और नैतिक पतन के विरुद्ध भारतीय प्रतिरोध की आवाज हैं, और प्रेमचन्द भारतीय समाज के यथार्थ को कथा-साहित्य में जीवित अनुभव की तरह दर्ज करने वाले लेखक।

कार्लमार्क्स की 'दास कैपिटल', महात्मा गाँधी की 'हिन्द स्वराज' और प्रेमचन्द की 'गोदान' तीन ऐसी कृतियाँ हैं, जो सभ्यता की आलोचना और मनुष्य की मुक्ति के तीन बड़े आख्यान हैं। ये अलग-अलग ऐतिहासिक अनुभवों से उपजती हैं, लेकिन इनके केन्द्र में मनुष्य, उसका श्रम, उसका नैतिक जीवन और उसके शोषण का प्रश्न उपस्थित है।

'दास कैपिटल' आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था की सबसे गहरी आलोचनाओं में से एक है। मार्क्स ने दिखाया कि पूँजी केवल आर्थिक संरचना नहीं, बल्कि मनुष्य के श्रम, सम्बन्धों और चेतना को नियन्त्रित करने वाली शक्ति है। वस्तु, बाजार और मुनाफे के पीछे छिपे शोषण को उजागर करते हुए उन्होंने आधुनिक सभ्यता के भीतर मनुष्य की पराधीनता को समझने की कोशिश की।

इसके बरअक्स 'हिन्द स्वराज' आधुनिक सभ्यता पर आध्यात्मिक प्रश्न उठाती है। गाँधी के लिए संकट केवल आर्थिक नहीं था; आधुनिकता मनुष्य को उसकी आत्मा, समुदाय और प्रकृति से अलग कर रही थी। मशीन, उपभोग और केन्द्रीकृत सत्ता के विरुद्ध उन्होंने कुटीर उद्योग, आत्मानुशासन और सत्ता के विकेन्द्रीकरण (ग्राम स्वराज) का विचार रखा। 'हिन्द स्वराज' केवल औपनिवेशिक शासन की आलोचना नहीं, बल्कि आधुनिक विकास की उस अवधारणा का प्रतिरोध भी है जो मनुष्य को उपभोक्ता में बदल देती है।

यदि 'दास कैपिटल' आधुनिक पूँजीवाद का सिद्धान्त है और 'हिन्द स्वराज' उसकी नैतिक आलोचना, तो 'गोदान' उस सभ्यता के भीतर टूटते हुए भारतीय समाज का जीवन्त मानवीय दस्तावेज है। प्रेमचन्द ने भारतीय किसान, स्त्री, दलित, मध्यवर्ग और गाँव के जीवन को इस तरह प्रस्तुत किया कि सामाजिक विडम्बनाएँ अपनी पूरी तीव्रता के साथ सामने आ जाती हैं। होरी केवल एक किसान नहीं, बल्कि उस सभ्यता का प्रतीक है जिसमें श्रम करने वाला मनुष्य सबसे अधिक असुरक्षित है।

ये तीनों ग्रन्थ आधुनिक सभ्यता के संकट को तीन अलग-अलग स्तरों पर समझते हैं–मार्क्स संरचना और अर्थव्यवस्था के स्तर पर, गाँधी नैतिकता और सभ्यता के स्तर पर, और प्रेमचन्द मनुष्य के सामाजिक अनुभव के स्तर पर। तीनों श्रम की गरिमा को स्वीकार करते हैं। तीनों बाजार और धन-केन्द्रित समाज के प्रति गहरी शंका रखते हैं। तीनों मनुष्य को वस्तु में बदल देने वाली व्यवस्था के विरोधी हैं। और तीनों इस बात को समझते हैं कि सभ्यता का संकट अन्ततः मनुष्य के संकट में बदल जाता है।

प्रेमचन्द ने 'महाजनी सभ्यता' की जो आलोचना की थी, वह आज और अधिक भयावह रूप में हमारे सामने उपस्थित है। बाजार अब केवल अर्थव्यवस्था नहीं, बल्कि संस्कृति, राजनीति, शिक्षा और मनुष्य की इच्छाओं तक को नियन्त्रित कर रहा है। ऐसे समय में मार्क्स की आलोचना, गाँधी की दृष्टि और प्रेमचन्द की संवेदना हमें उस भविष्य की ओर देखने की शक्ति दे सकती है जहाँ विकास का केन्द्र बाजार नहीं, मनुष्य हो।

'दास कैपिटल' के अनुसार पूँजीवाद केवल आर्थिक व्यवस्था नहीं, बल्कि जीवन और सम्बन्धों को नियन्त्रित करने वाली संरचना है। वस्तु, श्रम और मुनाफे के तन्त्र में श्रमिक अपने श्रम और उसके फल से अलग हो जाता है; मार्क्स इसे 'विमुखता' कहते हैं। आज भूमण्डलीकरण, डिजिटल पूँजीवाद और कॉरपोरेट संस्कृति के दौर में यह चेतावनी और अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है। नागरिक उपभोक्ता में बदल रहा है, राजनीति जनसरोकारों की जगह प्रबन्धन और प्रचार का माध्यम बनती जा रही है, तथा असमानता और पूँजी का केन्द्रीकरण लगातार बढ़ रहा है।

लेकिन मार्क्स का महत्त्व केवल इसलिए नहीं है कि उन्होंने पूँजीवाद की आलोचना की। उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने इतिहास और समाज को देखने की एक आलोचनात्मक दृष्टि दी। उन्होंने बताया कि सामाजिक संरचनाएँ शाश्वत नहीं होतीं; वे मनुष्यों द्वारा निर्मित होती हैं और इसलिए बदली भी जा सकती हैं। यही दृष्टि लोकतन्त्र को केवल संवैधानिक ढाँचे के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक न्याय की प्रक्रिया के रूप में देखने की प्रेरणा देती है।

दूसरी ओर 'हिन्द स्वराज' आधुनिक सभ्यता की सामाजिक आलोचना प्रस्तुत करती है। गाँधी के लिए स्वराज केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता नहीं, बल्कि आत्मानुशासन, आत्मनिर्भरता और जनजागरण की प्रक्रिया है। वे उस विकास-दृष्टि पर प्रश्न उठाते हैं जो मनुष्य को केवल उपभोक्ता में बदल देती है। आज जलवायु संकट, पर्यावरण विनाश, हिंसा और सामाजिक विघटन के दौर में गाँधी की चेतावनी नये अर्थ ग्रहण करती है। वे हमें यह सोचने के लिए विवश करते हैं कि क्या आर्थिक वृद्धि ही सभ्यता का अन्तिम लक्ष्य है, या करुणा, सामुदायिकता और नैतिक नागरिकता भी उतनी ही आवश्यक हैं।

मार्क्स और गाँधी के बीच मतभेद भी हैं। मार्क्स औद्योगिक विकास को ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा मानते हैं, जबकि गाँधी मशीनवादी सभ्यता पर सन्देह करते हैं। मार्क्स वर्ग-संघर्ष और संरचनात्मक परिवर्तन की बात करते हैं, गाँधी नैतिक परिवर्तन और आत्मशुद्धि की। फिर भी दोनों के बीच एक साझा तत्त्व है–मनुष्य की गरिमा को बचाने की बेचैनी। दोनों ऐसी व्यवस्था के विरोधी हैं जिसमें मनुष्य साधन बन जाए और लाभ सर्वोच्च मूल्य बनकर स्थापित हो।

प्रेमचन्द का महत्त्व इसी सन्दर्भ में और बढ़ जाता है। भले उन्होंने कोई राजनीतिक दर्शन न दिया हो, लेकिन भारतीय समाज की आत्मा को जिस गहराई से उन्होंने महसूस किया, वह उन्हें मार्क्स और गाँधी के बीच एक महत्त्वपूर्ण सेतु

बनाता है। 'गोदान' केवल एक किसान की कहानी नहीं, बल्कि भारतीय समाज की सच्चाई है।

प्रेमचन्द ने भारतीय समाज की उन अन्तर्विरोधी संरचनाओं को पहचाना, जिनमें आर्थिक शोषण, जातिगत भेदभाव, धार्मिक रूढ़ियाँ और नैतिक पाखण्ड एक-दूसरे से गुँथे हुए हैं। 'महाजनी सभ्यता' में उन्होंने जिस बाजारवादी मानसिकता की आलोचना की, वह आज के कॉरपोरेट और उपभोक्तावादी युग में और भी प्रासंगिक दिखाई देती है। 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआँ', 'कफन' और 'पूस की रात' जैसी रचनाएँ बताती हैं कि प्रेमचन्द केवल करुणा के लेखक नहीं थे; वे भारतीय समाज के भीतर मौजूद सत्ता-सम्बन्धों और अमानवीयताओं के सजग विश्लेषक भी थे। उनकी दृष्टि का केन्द्र वह साधारण मनुष्य है जो इतिहास और राजनीति के बड़े आख्यानों में अक्सर अदृश्य रह जाता है। यही कारण है कि प्रेमचन्द का साहित्य हमें केवल भारतीय समाज का यथार्थ नहीं दिखाता, बल्कि यह भी सिखाता है कि किसी समाज का मूल्यांकन उसके सबसे कमजोर और वंचित लोगों की स्थिति से किया जाना चाहिए।

मार्क्स जिस शोषण की बात करते हैं, उसका भारतीय चेहरा 'गोदान' में दिखाई देता है। जमींदार, महाजन, पण्डित और सामाजिक रूढ़ियाँ मिलकर किसान के जीवन को नियन्त्रित करती हैं। लेकिन प्रेमचन्द केवल आर्थिक शोषण तक सीमित नहीं रहते। वे दिखाते हैं कि भारतीय समाज में जाति, धर्म, पितृसत्ता और नैतिक दबाव किस तरह शोषण को और जटिल बना देते हैं। इसीलिए उन्हें किसी एक वैचारिक खाँचे में नहीं रखा जा सकता।

प्रेमचन्द के यहाँ गाँधी का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। ग्रामीण जीवन, नैतिकता, स्वदेशी चेतना और सामुदायिकता के कई तत्त्व गाँधी से संवाद करते हैं। लेकिन प्रेमचन्द गाँधी की तरह गाँव का रोमानीकरण नहीं करते। वे गाँव की गरीबी, जातिगत विभाजन और स्त्री उत्पीड़न को भी उतनी ही तीव्रता से चित्रित करते हैं।

धनिया का चरित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह केवल करुणा की पात्र नहीं, बल्कि प्रतिरोध की आवाज भी है। प्रेमचन्द की स्त्रियाँ सामाजिक अन्याय का सामना करती हैं। दलित और हाशिये के पात्रों की उपस्थिति उन्हें अपने समय से आगे ले जाती है। यद्यपि दलित और स्त्रीवादी आलोचनाएँ उनकी सीमाओं की ओर संकेत करती हैं, फिर भी हिन्दी साहित्य में सामाजिक यथार्थ को इतनी व्यापक मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत करने वाले लेखक विरले हैं।

आज का भारत अभूतपूर्व अन्तर्विरोधों का भारत है। एक ओर तकनीकी विकास, डिजिटल विस्तार और आर्थिक वृद्धि का उत्सव है; दूसरी ओर बेरोजगारी, किसान संकट, श्रम की असुरक्षा, सामाजिक ध्रुवीकरण और साम्प्रदायिक तनाव भी हैं। लोकतन्त्र की संस्थाएँ मौजूद हैं, लेकिन लोकतान्त्रिक संस्कृति लगातार सिकुड़ रही है। असहमति और प्रतिरोध के प्रति सत्ता का दमनात्मक आचरण बढ़ता जा रहा है। बाजार की आक्रामकता संस्कृति और शिक्षा को ग्रस रही है।

ऐसे हाहाकारी समय में मार्क्स, गाँधी और प्रेमचन्द की ओर लौटना किसी अतीतजीवी आग्रह का हिस्सा नहीं, बल्कि वर्तमान की आलोचनात्मक समझ को बेहतर बनाना है। मार्क्स हमें आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं की आलोचना करना सिखाते हैं। गाँधी हमें नैतिकता, अहिंसा और आत्मसंयम की याद दिलाते हैं। प्रेमचन्द हमें मनुष्य की पीड़ा, उसकी गरिमा और उसकी जिजीविषा से जोड़ते हैं।

भारतीय समाज को केवल वर्ग के आधार पर नहीं समझा जा सकता, और न केवल नैतिकता के आधार पर। यहाँ जाति, वर्ग, धर्म, भाषा, लिंग और क्षेत्रीय असमानताओं का जटिल यथार्थ मौजूद है। मार्क्स की वर्ग-दृष्टि, गाँधी की नैतिक राजनीति और प्रेमचन्द का सामाजिक यथार्थ मिलकर भारतीय लोकतन्त्र की जटिलता को समझने का व्यापक आधार प्रदान करते हैं।

यहाँ डॉ. भीमराव अम्बेडकर की उपस्थिति भी अनिवार्य हो जाती है। उन्होंने रेखांकित किया कि केवल आर्थिक विषमता ही नहीं, बल्कि जाति-आधारित असमानता भी भारतीय लोकतन्त्र की सबसे बड़ी चुनौती है। सामाजिक लोकतन्त्र, समानता और बन्धुत्व पर उनका आग्रह भारतीय लोकतन्त्र की नैतिक नींव को मजबूत करता है। आज जब सामाजिक ध्रुवीकरण और असमानता नये रूपों में उपस्थित हैं, तब मार्क्स, गाँधी, अम्बेडकर और प्रेमचन्द के बीच संवाद और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

गाँधी की ग्राम-स्वराज की कल्पना पर अम्बेडकर ने महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये थे। उनके अनुसार भारतीय गाँव केवल आत्मनिर्भरता की इकाइयाँ नहीं थे, बल्कि अनेक बार जातिगत उत्पीड़न के केन्द्र भी रहे हैं। भारतीय जाति-यथार्थ को उसकी सम्पूर्ण जटिलता में समझने की दृष्टि से मार्क्सवाद की अपनी सीमाएँ रही हैं। प्रेमचन्द भी अपने समय की ऐतिहासिक सीमाओं से पूरी तरह मुक्त नहीं थे। लेकिन किसी विचारक या लेखक का महत्त्व उसकी त्रुटिहीनता में नहीं, बल्कि उसके द्वारा उठाये गये प्रश्नों में होता है।

'सबलोग' का यह अंक इन्हीं प्रश्नों के साथ एक बहुविषयी संवाद करने की कोशिश है। साहित्य, राजनीति, समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र और सांस्कृतिक अध्ययन के बीच संवाद स्थापित करते हुए यह समझने का प्रयास है कि क्या आज भी मनुष्यता, न्याय और लोकतन्त्र की कोई वैकल्पिक कल्पना सम्भव है। क्या विकास को केवल बाजार की भाषा में परिभाषित किया जा सकता है? क्या साहित्य आज भी समाज की चेतना को बचा सकता है? क्या लोकतन्त्र केवल चुनावी व्यवस्था है, या वह समानता, संवाद और गरिमा की सतत प्रक्रिया भी है?

मार्क्स, गाँधी और प्रेमचन्द को साथ पढ़ना दरअसल भारतीय समाज की उसी अधूरी खोज को आगे बढ़ाना है, जिसमें आर्थिक न्याय और मानवीय संवेदना की समान रूप से परवाह है। यदि लोकतन्त्र को सत्ता और बाजार के गठजोड़ से बचाना है, यदि समाज को हिंसा, घृणा और असमानता से मुक्त करना है और यदि मनुष्य को केवल उपभोक्ता में बदलने से रोकना है, तो इन तीनों से संवाद करना होगा। किसी भी सभ्यता की वास्तविक कसौटी उसकी तकनीकी शक्ति या आर्थिक समृद्धि नहीं, बल्कि यह होती है कि वह अपने सबसे कमजोर मनुष्य के साथ कैसा व्यवहार करती है। यही वह प्रश्न है जो 'दास कैपिटल', 'हिन्द स्वराज' और 'गोदान' को आज भी हमारे समय के केन्द्र में बनाए रखता है।

शायद इसीलिए जब हम एक अधिक न्यायपूर्ण, मानवीय और लोकतान्त्रिक समाज की कल्पना करते हैं, तो ये तीनों कृतियाँ केवल पुस्तकें नहीं रह जातीं; वे हमारे समय के नैतिक और बौद्धिक कम्पास में रूपान्तरित हो जाती हैं। वे हमें स्मरण कराती हैं कि मनुष्य का भविष्य केवल आर्थिक विकास-दरों, तकनीकी उपलब्धियों या चुनावी सफलताओं से निर्मित नहीं होगा, बल्कि न्याय, करुणा, समानता और मानवीय गरिमा जैसे मूल्यों की नींव पर ही टिक सकेगा। अपने-अपने समय की उपज होने के बावजूद ये कृतियाँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं, क्योंकि वे चेतावनी देती हैं कि जब समाज अपना विवेक खोने लगता है, तब समृद्धि खोखली, प्रगति अमानवीय और लोकतन्त्र महज एक औपचारिक व्यवस्था बनकर रह जाता है। इन पुस्तकों की ओर लौटना अतीत की शरण में जाना नहीं, बल्कि वर्तमान को समझने और भविष्य को अधिक न्यायपूर्ण, संवेदनशील तथा मानवीय बनाने की एक अनिवार्य बौद्धिक यात्रा है।

किशन कालजयी

मुक्ति के नये सूत्रों की तलाश

मणीन्द्र नाथ ठाकुर

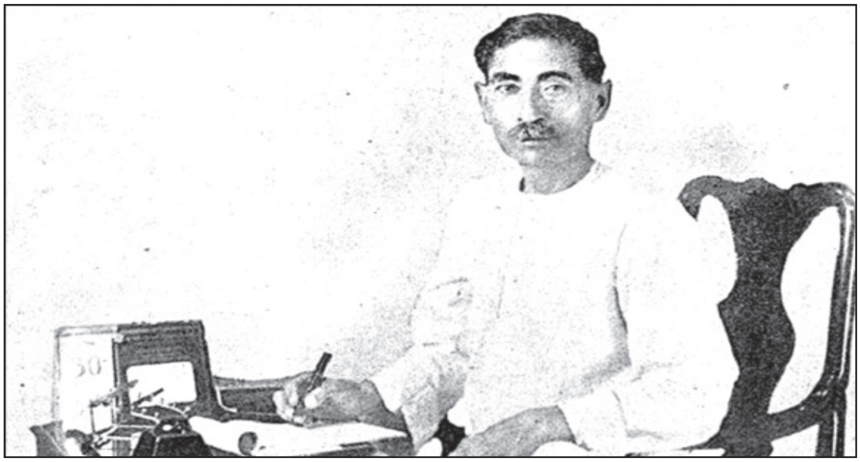

गाँधी मानते हैं कि समाज में बदलाव के लिए मनुष्य का नैतिक रूप से बेहतर होना जरूरी है, जबकि मार्क्स का जोर उन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओं को बदलने पर है जो शोषण और असमानता पैदा करती हैं। प्रेमचन्द इन दोनों दृष्टियों को जोड़ते हैं। उनकी रचनाएँ दिखाती हैं कि समाज केवल व्यवस्थाओं से नहीं बनता और न ही केवल अच्छे लोगों से बदलता है। वास्तविक परिवर्तन तब सम्भव है जब मनुष्य की चेतना और समाज की संरचना, दोनों में बदलाव आए। यही उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी वैचारिक शक्ति है।

साहित्य को पढ़ने के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं। सबसे सामान्य उद्देश्य उसका रसास्वादन है। एक अच्छा साहित्यकार जीवन की साधारण दिखने वाली घटनाओं, सामाजिक सम्बन्धों और अपने समय की परिस्थितियों को इस तरह प्रस्तुत करता है कि पाठक के भीतर अनेक भावों का संचार होने लगता है। कभी साहित्य आनन्द देता है, कभी संवेदना जगाता है और कभी जीवन के कठिन क्षणों में सहारा भी बन जाता है। प्रसिद्ध विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल अपनी युवावस्था में गहरे अवसाद से गुजर रहे थे। उन्होंने स्वयं लिखा है कि अँग्रेजी कवि विलियम वड्र्सवर्थ की कविताओं ने उन्हें जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण दिया। प्रकृति और मानवीय संवेदनाओं से भरी उन कविताओं ने उनके भीतर आशा का संचार किया और उन्हें जीवन का अर्थ पुनः खोजने में सहायता दी। हमारे यहाँ भी अनेक लोगों ने साहित्य को केवल मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि प्रेरणा के स्रोत के रूप में पढ़ा है। मेरे कई मित्र छात्र जीवन में रामधारी सिंह दिनकर की 'रश्मिरथी' को बार-बार पढ़ते थे, क्योंकि उससे उन्हें संघर्ष करने और आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती थी।

लेकिन साहित्य को पढ़ने का एक और तरीका भी हो सकता है। विशेषकर स्वतन्त्रता संग्राम के दौर में रचा गया साहित्य केवल साहित्यिक आनन्द का विषय नहीं है; उसमें ऐसे विचार और अनुभव भी निहित हैं जो दर्शन, समाज-अध्ययन और मानवता के भविष्य पर चिन्तन के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। इस दिशा में जापानी चिन्तक और साहित्य-आलोचक कोजिन करातानी की 'ट्रांसक्रिटिक' पद्धति उपयोगी हो सकती है। करातानी का सुझाव है कि दो विचारकों को केवल एक-दूसरे से तुलना करने के बजाय एक-दूसरे की दृष्टि से पढ़ा जाए। इस प्रकार गाँधी को मार्क्स के माध्यम से पढ़ने पर वर्ग, शोषण और पूँजी के प्रश्न अधिक स्पष्ट दिखाई देते हैं, जबकि मार्क्स को गाँधी की दृष्टि से देखने पर नैतिकता, आत्मसंयम और अहिंसा का महत्त्व सामने आता है। इसी तरह प्रेमचन्द का साहित्य इन दोनों के बीच एक महत्त्वपूर्ण सेतु बन सकता है, क्योंकि उनके रचना-संसार में वर्ग, जाति, नैतिकता, श्रम और मानवीय पीड़ा के प्रश्न अत्यन्त जीवन्त रूप में उपस्थित हैं। इतना ही नहीं, प्रेमचन्द की दृष्टि से गाँधी और मार्क्स दोनों को फिर से पढ़ा जा सकता है। इस प्रकार साहित्य केवल सौन्दर्यबोध का माध्यम नहीं रह जाता, बल्कि नये सामाजिक और दार्शनिक चिन्तन की सम्भावनाओं को खोलने वाला स्रोत भी बन जाता है।

गाँधी और मार्क्स को प्रायः दो भिन्न प्रकार के चिन्तकों के रूप में देखा जाता है। गाँधी मनुष्य को मूलतः एक नैतिक प्राणी मानते हैं। उनका विश्वास है कि यदि मनुष्य अपनी नैतिक शक्ति को विकसित करे तो वह स्वयं को भी बदल सकता है और समाज को भी। गाँधी के आर्थिक चिन्तन में यह स्पष्ट दिखाई देता है।

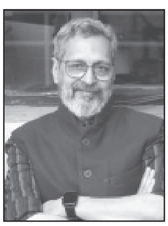

लेखक समाजशास्त्री और जे.एन.यू. में प्राध्यापक हैं।
+919968406430
manindrat@gmail.com

उनका मानना था कि प्रकृति हर व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है, लेकिन किसी एक व्यक्ति के लालच की नहीं। इसलिए मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं को सीमित करना चाहिए। इसी प्रकार वे सम्पत्ति के अधिकार को पूर्ण अधिकार नहीं मानते थे। उनके अनुसार, जिसके पास अधिक सम्पत्ति है, वह उसका मालिक नहीं बल्कि समाज का ट्रस्टी है। गाँधी को विश्वास था कि मनुष्य पर्याप्त नैतिक चेतना विकसित कर सकता है और इन सिद्धान्तों के अनुसार जीवन जी सकता है।

इसके विपरीत मार्क्स का जोर सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं पर है। उनका तर्क है कि केवल नैतिक उपदेशों के भरोसे समाज नहीं बदलता। मनुष्य का व्यवहार और उसकी नैतिकता भी उन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से निर्मित होती है जिनमें वह रहता है। इसलिए, यदि शोषण और असमानता को समाप्त करना है, तो उन संरचनाओं को बदलना होगा जो उन्हें जन्म देती हैं। मार्क्स के लिए प्रश्न यह नहीं है कि लोग अच्छे बनें, बल्कि यह है कि ऐसी व्यवस्था बने जिसमें मनुष्य अपनी मानवीय सम्भावनाओं का विकास कर सके।

पहली दृष्टि में ऐसा लगता है कि गाँधी और मार्क्स एक-दूसरे के विरोधी हैं। लेकिन गहराई से देखने पर पता चलता है कि वे मानव मुक्ति की समस्या के दो अलग-अलग आयामों पर बल दे रहे हैं। गाँधी की चिन्ता यह है कि यदि मनुष्य अनैतिक हो जाए तो कोई भी व्यवस्था टिक नहीं सकती। दूसरी ओर मार्क्स यह याद दिलाते हैं कि यदि व्यवस्था अन्यायपूर्ण हो तो मनुष्य के लिए नैतिक बने रहना भी अत्यन्त कठिन हो जाता है। इसलिए नैतिकता और संरचना को परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक रूप में समझने की आवश्यकता है।

यहीं प्रेमचन्द की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। प्रेमचन्द मानो गाँधी और मार्क्स दोनों से कहते हैं कि आप दोनों सही हैं, लेकिन आपकी सच्चाइयाँ अधूरी हैं जब तक वे एक-दूसरे से संवाद नहीं करतीं। प्रेमचन्द के साहित्य में सामाजिक संरचनाओं की कठोर वास्तविकता भी है और मनुष्य की नैतिक आकाँक्षा भी। किसान, मजदूर, स्त्री, दलित, मध्यवर्गीय पात्र और उनकी संघर्षपूर्ण स्थितियाँ केवल आर्थिक या राजनीतिक प्रश्न नहीं हैं; वे नैतिक प्रश्न भी हैं। इसी कारण प्रेमचन्द का बहुचर्चित 'आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद' केवल साहित्यिक सिद्धान्त नहीं, बल्कि सामाजिक चिन्तन की एक मौलिक उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है।

आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद को गाँधी और मार्क्स के विचारों के साधारण समन्वय के रूप में नहीं समझना चाहिए। यह उनसे आगे की एक रचनात्मक उपलब्धि है। प्रेमचन्द यथार्थ को उसकी समूची कठोरता में देखते हैं, लेकिन उसके भीतर परिवर्तन की नैतिक सम्भावना को भी खोजते हैं। इस दृष्टि से गाँधी को पढ़ने पर उनके चिन्तन में संरचनात्मक प्रश्नों की उपस्थिति अधिक स्पष्ट दिखाई देती है, जबकि मार्क्स को पढ़ने पर उनकी परियोजना के नैतिक आधारों को नये ढंग से समझा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, प्रेमचन्द दोनों चिन्तकों को अधिक प्रकाशमान कर देते हैं।

यही कारण है कि प्रेमचन्द को केवल कथाकार के रूप में पढ़ना पर्याप्त नहीं है। उन्हें एक ऐसे चिन्तक के रूप में भी पढ़ा जाना चाहिए जिन्होंने भारतीय समाज की ठोस वास्तविकताओं के बीच नैतिकता और संरचना, आदर्श और यथार्थ, व्यक्ति और व्यवस्था के सम्बन्धों पर गहन विचार किया। प्रेमचन्द की दृष्टि से गाँधी और मार्क्स का पुनर्पाठ किया जा सकता है, और गाँधी तथा मार्क्स की दृष्टि से प्रेमचन्द का भी। यही ट्रांसक्रिटिक की वास्तविक सम्भावना है। इस पद्धति से प्रेमचन्द की कहानियों और उपन्यासों का पुनर्पाठ न केवल साहित्य की नयी व्याख्या प्रस्तुत करेगा, बल्कि समकालीन समाज और भविष्य के मुक्ति-संघर्षों के लिए नये वैचारिक सूत्र भी उपलब्ध करा सकता है।

उदाहरण के लिए प्रेमचन्द के 'गोदान' को लें। यह केवल होरी की व्यक्तिगत त्रासदी की कहानी नहीं है, बल्कि भारतीय समाज में सामन्तवाद से पूँजीवाद की ओर हो रहे संक्रमण का एक व्यापक आख्यान है। इस ऐतिहासिक परिवर्तन पर अर्थशास्त्रियों, इतिहासकारों और समाजशास्त्रियों ने बहुत लिखा है, लेकिन इस बदलाव के दौरान मनुष्यों के जीवन में क्या घटित होता है, सामाजिक सम्बन्ध किस प्रकार बदलते हैं, और परिवर्तन की वास्तविक शक्तियाँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं—इसकी जितनी सूक्ष्म और जीवन्त समझ गोदान में मिलती है, वह केवल सैद्धांतिक विश्लेषण से सम्भव नहीं होती।

उपन्यास में अँग्रेजी शासन की जमींदारी व्यवस्था है। जमींदार को राज्य के लिए किसानों से लगान वसूलना है। वह व्यक्तिगत रूप से कितना भी उदार, दयालु या संवेदनशील क्यों न हो, व्यवस्था की सीमाओं से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकता। होरी और जमींदार के बीच होने वाले संवाद इसी विडम्बना को अत्यन्त मार्मिक ढंग से सामने लाते हैं। यहाँ प्रेमचन्द केवल व्यक्ति की नैतिकता नहीं देखते, बल्कि उन संरचनात्मक बन्धनों को भी समझते हैं जिनमें व्यक्ति फँसा हुआ है। यही वह बिन्दु है जहाँ प्रेमचन्द का दृष्टिकोण गाँधी और मार्क्स दोनों से संवाद करता दिखाई देता है।

गाँधी के लिए जमींदार केवल एक वर्ग का प्रतिनिधि नहीं है; उसके भीतर मनुष्यता और नैतिक परिवर्तन की सम्भावना भी मौजूद है। दूसरी ओर मार्क्सवादी विश्लेषण मुख्यतः उसके वर्गीय चरित्र पर बल देता है, क्योंकि सामाजिक संरचना को समझने के लिए वही निर्णायक तत्त्व माना जाता है। प्रेमचन्द इन दोनों आयामों को एक साथ पकड़ते हैं। उनके लिए जमींदार का वर्गीय स्थान महत्त्वपूर्ण है, लेकिन उसकी मनुष्यता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। वे दिखाते हैं कि सामाजिक परिवर्तन केवल संरचनाओं के टूटने से नहीं आता; उसके लिए मनुष्यों के भीतर परिवर्तन की सम्भावना का बने रहना भी आवश्यक है।

साथ ही प्रेमचन्द सामन्ती व्यवस्था के ऐतिहासिक बिखराव को भी स्पष्ट रूप से देख रहे हैं। गोबर केवल एक पात्र नहीं है; वह उभरती हुई नयी सामाजिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। उसका गाँव से शहर की ओर जाना, परम्परागत सम्बन्धों पर प्रश्न उठाना, और जीवन को नये ढंग से समझना उस परिवर्तन का संकेत है जो सामन्ती समाज की नींव को कमजोर कर रहा है। उसके भीतर विद्रोह है, गतिशीलता है और परिवर्तन की आकाँक्षा है। इस अर्थ में वह उस वर्गीय आधार का प्रतिनिधित्व करता है जो पुरानी व्यवस्था को चुनौती देने की क्षमता रखता है।

लेकिन प्रेमचन्द केवल परिवर्तन की शक्तियों को ही नहीं देखते, बल्कि उनकी सीमाओं को भी पहचानते हैं। वे जानते हैं कि न